एकस्वरूपभेदश्च बाह्यकर्मप्रवृत्तिजः । देवादि भेदेऽपध्वस्ते नास्त्येवावरणे हि सः ॥३३॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे द्वितीयेंऽशे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्ते मौनिनं भूयश्चिन्तयानं महीपतिम् । प्रत्युवाचाथ विप्रोऽसावद्वैतान्तर्गतां कथाम् ॥१॥

ब्राह्मण उवाच

श्रूयतां नृपशार्दूल यद्गीतमृभुणा पुरा । अवबोधं जनयता निदाघस्य महात्मनः ॥२॥
ऋभुर्नामाऽभवत्पुत्रो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । विज्ञाततत्त्वसद्भावो निसर्गादिव भूपते ॥३॥
तस्य शिष्यो निदाघोऽभूत्पुलस्त्यतनयः पुरा। प्रादादशेषविज्ञानं स तस्मै परया मुदा ॥४॥
अवाप्तज्ञानतन्त्रस्य न तस्याद्वैतवासना । स ऋभुस्तर्कयामास निदाघस्य नरेश्वर ॥५॥
देविकायास्तटे वीरनगरं नाम वै पुरम्। समृद्धमतिरम्यं च पुलस्त्येन निवेशितम् ॥६॥
रम्योपवनपर्यन्ते स तस्मिन्पार्थिवोत्तम। निदाघो नाम योगज्ञ ऋभुशिष्योऽवसत्पुरा ॥७॥
दिव्ये वर्षसहस्रे तु समतीतेऽस्य तत्पुरम्। जगाम स ऋभुः शिष्यं निदाघमवलोकक: ॥८॥
स तस्य वैश्वदेवान्ते द्वारालोकनगोचरे। स्थितस्तेन गृहीतार्घ्यो निजवेश्म प्रवेशितः ॥९॥

आत्मा तो सदा एकमात्र ज्ञानस्वरूप है, उसमें देवादि भेदों की प्रवृत्ति वाह्य कर्मों में होने वाली प्रवृत्ति के कारण है । देवादि भेदों के विनष्ट हो जाने पर वह वाह्य कर्म रूपी आवरण नहीं रह जाता है ॥३३॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के द्वितीय अंश के चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१४॥

ऋभु द्वारा निदाघ को आत्मोपदेश

श्रीपराशर महर्षि ने कहा— इस तरह से कहने पर जब राजा मौन हो गये तब भेद का चिन्तन करने वाले राजा को उस ब्राह्मण ने अद्वैत विषयिणी कथा सुनायी ॥१॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे राजन् ! निदाघ को ज्ञानोपदेश करते हुए जो ऋभु ने कहा था उसे मैं तुम्हें सुनाता हूँ सुनो ॥२॥ परमेष्ठि ब्रह्माजी के पुत्र ऋभु थे । हे राजन् ! उनको स्वभाविक रूप से तत्त्वज्ञान था ॥३॥ उनके शिष्य पुलस्त्य के पुत्र निदाघ हुए । अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्होंने निदाघ को सम्पूर्ण ज्ञान प्रदान कर दिया ॥४॥ हे राजन् ! ऋभु ने जान लिया कि सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता निदाघ को अद्वैत में निष्ठा नहीं है ॥५॥ प्राचीनकाल में देविका नदी के तट पर महर्षि पुलस्त्य ने वीरपुर नाम के एक समृद्ध नगर को बसाया ॥६॥ मनोहर उपवनों से सुशोभित उस नगर में ऋभु के शिष्य निदाघ रहते थे । वे योग के ज्ञाता थे ॥७॥ देवताओं के एक हजार वर्ष बीत जाने के पश्चात् ऋभु अपने शिष्य निदाघ को देखने के लिए उस नगर में गये ॥८॥ उस समय निदाघ बलिवैश्वदेव करके द्वार पर अतिथि की प्रतीक्षा कर रहे थे, उनको अर्घ्य प्रदान करके निदाघ अपने भवन में ले गये ॥९॥ हाथ-पैर धोकर आसन पर बैठाकर द्विजश्रेष्ठ निदाघ ने ऋभु से आदरपूर्वक कहा

प्रक्षालिताङ्घ्रिपाणिं च कृतासनपरिग्रहम्। उवाच स द्विजश्रेष्ठो भुज्यतामिति सादरम्॥१०॥

ऋभुरुवाच

भो विप्रवर्य भोक्तव्यं यदन्नं भवतो गृहे। तत्कथ्यतां कदन्नेषु न प्रीतिः सततं मम॥११॥

निदाध उवाच

सक्तुयावकवाट्यानामपूपानां च मे गृहे। यद्रोचते द्विजश्रेष्ठ तत्त्वं भुङ्क्ष्व यथेच्छया॥१२॥

ऋभुरुवाच

कदन्नानि द्विजैतानि मृष्टमन्नं प्रयच्छ मे। संयावपायसादीनि द्रप्सफाणितवन्ति च॥१३॥
हे हे शालिनि मद्गेहे यत्किञ्चिदतिशोभनम्। भक्ष्योपसाधनं मृष्टं तेनास्यान्नं प्रसाधय॥१४॥

ब्राह्मण उवाच

इत्युक्ता तेन सा पत्नी मृष्टमन्नं द्विजस्य यत्। प्रसाधितवती तद्वै भर्तुर्वचनगौरवात्॥१५॥
तं भुक्तवन्तमिच्छातो मृष्टमन्नं महामुनिम्। निदाघः प्राह भूपाल प्रश्रयावनतः स्थितः॥१६॥

निदाघ उवाच

अपि ते परमा तृप्तिरुत्पन्ना तुष्टिरेव च। अपि ते मानसं स्वस्थमाहारेण कृतं द्विज॥१७॥
क्व निवासो भवान्विप्र क्व च गन्तुं समुद्यतः। आगम्यते च भवता यतस्तच्च द्विजोच्यताम्॥१८॥

ऋभुरुवाच

क्षुद्यस्य तस्य भुक्तेऽन्ने तृप्तिर्ब्राह्मण जायते। न मे क्षुन्नाभवत् तृप्ति कस्मान्मां परिपृच्छसि॥१९॥
वह्निना पार्थिवे धातौ क्षपिते क्षुत्समुद्भवः। भवत्यम्भसि च क्षीणे नृणां तृडपि जायते॥२०॥
क्षुत्तृष्णे देहधर्माख्ये न ममैते यतो द्विज। ततः क्षुत्सम्भवाभावात्तृप्तिरस्त्येव मे सदा॥२१॥
मनसः स्वस्थता तुष्टिश्चित्तधर्माविमौ द्विज। चेतसो यस्य तत्पृच्छ पुमानेभिर्न युज्यते॥२२॥

भोजन कीजिए ॥१०॥ **ऋभु ने कहा—** हे विप्रवर्य ! आपके यहाँ क्या-क्या अन्न खाना होगा ? क्योंकि कदन्न में मेरी कभी भी रुचि नहीं होती है ॥११॥ **निदाघ ने कहा—** हे द्विजश्रेष्ठ ! मेरे घर में सत्तु, यवकी लप्सी, बाटी आदि तथा पूए हैं, आपको जो अच्छा लगे उसे आप खायँ ॥१२॥ **ऋभु ने कहा—** हे द्विज ! ये तो कदन्न हैं, मुझे तुम हलुआ, खीर एवं मट्ठा एवं खाँड़ से बने मीठा भोजन कराओ ॥१३॥ **निदाघ ने कहा—** ऐ शालिनी (पत्नी) मेरे घर में जो अच्छी से अच्छी वस्तु हो जो भोजन का मीठा साधन हो उससे अच्छा भोजन बनाओ ॥१४॥ **ब्राह्मण (जडभरत) ने (सौवीर राजा से) कहा—** इस तरह से कहे जाने पर वह पत्नी अपने पति के वचन को मानकर उस ब्राह्मण के लिए मीठा भोजन बनायी ॥१५॥ अपनी इच्छा के अनुसार भोजन कर लेने पर निदाघ ने उन ब्राह्मण से विनीत होकर कहा ॥१६॥ **निदाघ ने कहा—** हे द्विज ! क्या इस भोजन से आपको अत्यन्त तृप्ति हुयी ? आप सन्तुष्ट हुए, आपका मन स्वस्थ हुआ ?॥१७॥ हे विप्र ! आपका निवास कहाँ है ? आप कहाँ जा रहे हैं ? आप कहाँ से आ रहे हैं ? उसे आप बतलायें ॥१८॥ **ऋभु ने कहा—** हे ब्राह्मण ! जिसको भूख लगती है, उसी को तृप्ति होती है। न तो मुझको भूख है और न मुझको तृप्ति हुयी, मुझसे क्यों पूछते हों ॥१९॥ जाठराग्नि के द्वारा धातु के क्षीण कर दिए जाने पर किसी को भी भूख लगती है और जल के क्षीण हो जाने पर प्यास लगती है ॥२०॥ भूख और प्यास तो देह के धर्म हैं, ये धर्म मेरे (आत्मा के) नहीं हैं। अतएव जब मुझे भूख लगना ही असंभव है तो फिर मुझको सदैव तृप्ति वनी रहती है ॥२१॥ मन की स्वस्थता और सन्तुष्टि ये दोनों चित्त के धर्म हैं। अतएव

क्व निवासस्तवेत्युक्तं क्व गन्तासि च यत्त्वया। कुतश्चागम्यते तत्र त्रितयेऽपि निबोध मे ॥२३॥
पुमान्सर्वगतो व्यापी आकाशवदयं यतः। कुतः कुत्र क्व गन्तासीत्येदतदप्यर्थवत्कथम्॥२४॥
सोऽहं गन्ता न चागन्ता नैकदेशनिकेतनः। त्वं चान्ये च न च त्वं न नान्ये नैवाहमप्यहम्॥२५॥
मृष्टं न मृष्टमप्येषा जिज्ञासा मे कृता तव। किं वक्ष्यसीति तत्रापि श्रूयतां द्विजसत्तम॥२६॥
किमस्वाद्वथ वा मृष्टं भुञ्जतोऽस्ति द्विजोत्तम। मृष्टमेव यदामृष्टं तदेवोद्वेगकारकम्॥२७॥
अमृष्टं जायते मृष्टं मृष्टादुद्विजये जनः। आदिमध्यावसानेषु किमन्नं रुचिकारकम्॥२८॥
मृण्मयं हि गृहं यद्वन्मृदा लिप्तं स्थिरं भवेत्। पार्थिवोऽयं तथा देहः पार्थिवैः परमाणुभि ॥२९॥
यवगोधूममुद्गादि घृतं तैलं पयो दधि। गुडं फलादीनि तथा पार्थिवाः परमाणवः ॥३०॥
तदेतद्भवता ज्ञात्वा मृष्टामृष्टविचारि यत्। तन्मनस्समतालम्बि कार्यं साम्यं हि मुक्तये ॥३१॥

ब्राह्मण उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य परमार्थाश्रितं नृप। प्रणिपत्य महाभागो निदाघो वाक्यमब्रवीत्॥३२॥
प्रसीद मद्धितार्थाय कथ्यतां यत्त्वमागतः। नष्टो मोहस्तवाकर्ण्य वचांस्येतानि मे द्विज ॥३३॥

ऋभुरुवाच

ऋभुरस्मि तवाचार्यः प्रज्ञादानाय ते द्विज। इहागतोऽहं यास्यामि परमार्थस्तवोदितः॥३४॥
एवमेकमिदं विद्धि न भेदि सकलं जगत्। वासुदेवाभिधेयस्य स्वरूपं परमात्मनः॥३५॥

जिस चित्त के ये धर्म हैं उससे पूछो, पुरुष का उससे सम्बन्ध नहीं होता है ॥२२॥ तुमने यह जो पूछा है कि आपका निवास कहाँ है ? कहाँ जा रहे हैं ? और कहाँ से आ रहे हैं ? इसके विषय में मुझसे सुनो ॥२३॥ यह पुरुष चुकी आकाश के समान सर्वत्र व्यापक है, अतएव इसके विषय में कहाँ से कहाँ पर जाने वाले हैं, यह भी पूछना व्यर्थ ही है ॥२४॥ अतएव मैं न तो जाने वाला हूँ, और न आने वाला हूँ और न तो मेरा किसी एक स्थान में निवास है। वस्तुतः तू तुम नहीं हो, अन्य-अन्य नहीं हैं, और न मैं मैं हूँ (ये सब तो तू मैं, अन्य देह के कारण व्यवहृत होते हैं)॥२५॥ मधुर भी मधुर नहीं है, मैंने तो मधुर की जिज्ञासा इसलिए की थी कि तुम क्या कहते हो ? उसके विषय में हे द्विजश्रेष्ठ ! मुझसे सुनो ॥२६॥ खाने वाले के लिए स्वादिष्ट अथवा अस्वादिष्ट क्या है ? जो स्वादिष्ट है वही कुछ देर में उद्वेग कारक हो जाता है ॥२७॥ इसी तरह अस्वादिष्ट वस्तु भी कभी रुचिकर हो जाती है और रुचिकर वस्तु भी कभी उद्वेजक हो जाती है, कौन सा ऐसा अन्न है जो आदि, मध्य तथा अन्त तीनों में रुचिकर हो ॥२८॥ जिस तरह मिट्टी से बना घर मिट्टी से लिपने पर सुदृढ बना रहता है उसी तरह यह पार्थिव शरीर पार्थिव परमाणुओं से सुस्थिर रहता है ॥२९॥ यव, गेहूँ तथा मूँग आदि घी, तैल, दूध, दही, गुड तथा फल आदि पार्थिव परमाणु हैं॥३०॥ अतएव इस प्रकार से जानकर तुमने जो स्वादिष्ट और अस्वादिष्ट विचार किया, अपने उस चित्त को तुम्हें समदर्शी बनाना चाहिए क्योंकि समदर्शी होना ही मुक्ति का साधन है ॥३१॥ **ब्राह्मण (जड भरत) ने कहा—** राजन्! ऋभु के उस तरह से परमार्थ विषयक वचन को सुनकर निदाघ ने ऋभु को प्रणाम करके कहा ॥३२॥ हे द्विज ! आप प्रसन्न होइये। मेरा कल्याण करने के लिए यहाँ आने वाले आप कौन है ? इसे आप बतलाइये। आपके इन वाक्यों को सुनकर मेरा अज्ञान नष्ट हो गया है ॥३३॥ **ऋभु ने कहा—** मैं तुम्हारा आचार्य ऋभु हूँ। यहाँ तुम्हें ज्ञान प्रदान करने के लिए आया हूँ। अब मैं तुमको परमार्थ बतलाकर जा रहा हूँ ॥३४॥ इस तरह से तुम सम्पूर्ण जगत् को एकमात्र वासुदेवात्मक समझो इस जगत् में भगवदात्मक से भिन्न कुछ नहीं है। यह भगवान् का

ब्राह्मण उवाच

तथेत्युक्त्वा निदाघेन प्रणिपातपुरः सरम्। पूजितः परया भक्त्या इच्छातः प्रययावृभुः ॥३६॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे द्वितीयेंऽशे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

सोलहवाँ अध्याय

ब्राह्मण उवाच

ऋभुर्वर्षसहस्रे तु समतीते नरेश्वर। निदाघज्ञानदानाय तदेव नगरं ययौ॥१॥
नगरस्य बहिः सोऽथ निदाघं ददृशे मुनिः। महाबलपरीवारे पुरं विशति पार्थिवे॥२॥
दूरे स्थितं महाभागं जनसम्मर्दवर्जकम्। क्षुत्क्षामकण्ठमायान्तमरण्यात्ससमित्कुशम् ॥३॥
दृष्ट्वा निदाघं स ऋभुरुपगम्याभिवाद्य च। उवाच कस्मादेकान्ते स्थीयते भवता द्विज॥४॥

निदाघ उवाच

भो विप्र जनसम्मर्दो महानेष नरेश्वरः। प्रविविक्षुः पुरं रम्यं तेनात्र स्थीयते मया॥५॥

ऋभुरुवाच

नराधिपोऽत्र कतमः कतमश्चेतरो जनः। कथ्यतां मे द्विजश्रेष्ठ त्वमभिज्ञो मतो मम॥६॥

निदाघ उवाच

योऽयं गजेन्द्रमुन्मत्तमद्रिशृङ्गसमुच्छ्रितम्। अधिरूढो नरेन्द्रोऽयं परिलोकस्तथेतरः॥७॥

ऋभुरुवाच

एतौ हि गजराजानौ युगपद्दर्शितौ मम। भवता न विशेषेण पृथक्चिह्नोपलक्षणौ॥८॥

रूप है ॥३५॥ **ब्राह्मण (जड भरत) ने कहा—** निदाघ के द्वारा बहुत अच्छा कहकर साष्टाङ्ग प्रणिपात पूर्वक परमाभक्ति से पूजित होकर ऋभु अपनी इच्छा के अनुसार चले गये ॥३६॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के द्वितीय अंश के पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१५॥

ऋभु की आज्ञा से निदाघ का घर जाना

ब्राह्मण ने कहा— राजन् ! एक हजार वर्ष बीत जाने पर ऋभु निदाघ को ज्ञान प्रदान करने के लिए उसी नगर में गये ॥१॥ उन मुनि ने नगर के बाहर निदाघ को देखा कि राजा अपनी विशाल सेना के साथ नगर में प्रवेश कर रहे हैं ॥२॥ उन्होंने देखा कि महाभाग निदाघ जनसम्मर्द से दूर वन से समिधा तथा कुश आदि लेकर भूखे प्यासें आ रहे हैं ॥३॥ उनको वैसा देखकर ऋभु उनके पास जाकर प्रणाम करके पूछे हे द्विज ! आप एकान्त में क्यों खड़े हैं ?॥४॥ **निदाघ ने कहा—** यह राजा नगर में प्रवेश करना चाहता है, इसलिए नगर में बहुत भीड़ है, इसीलिए मैं यहाँ खड़ा हूँ ॥५॥ **ऋभु ने कहा—** मुझे लगता है कि आप इस नगर की सारी बाते जानते हैं। इसमें राजा कौन है ? और कौन दूसरे लोग हैं ?॥६॥ **निदाघ ने कहा—** यह जो पर्वत शिखर के समान ऊँचे गजेन्द्र के ऊपर बैठा है, वही राजा है और उससे भिन्न अन्य लोग हैं ॥७॥ **ऋभु ने कहा—** इन राजा और हाथी दोनों को